* सत्योदय *

मासिक पत्र) अग्रिम वार्षिक मूल्य १।) रुपया

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि आजकल जैन समाज का अधःपतन है। उसके जो कारण हैं और उनके निवारण का जो सत्य उपाय है खोज नहीं करते हैं और भेड़ियाधसान में पड़ते चले जाते हैं। अतः यह आव- श्यक है कि हम उस सत्यमार्ग की खोज करें और उस पर आरूढ़ होकर उन्नति के तक पहुँचें तथा धार्मिक या सामाजिक विषयों में आदर्श होजायें। अतः इसी की पूर्ति के वास्ते यह पत्र निकाला गया है आशा है कि सज्जनगण इसे अपना इसमें जैनसमाज के तथा अन्य भी बहुत से नामी नामी लेखकों के लेख रहेंगे अपने नाम के माहात्म्य ही उसकी नीति है जिसके लिये यह नियम होकर सत्यमार्ग का पूर्ण अनुयायी रहेगा। अतः आप शीघ्र ही ग्राहकश्रेणी में नाम धर १।।~) की वी० पी० से भेजने की आज्ञा दीजियेगा। नमूना मुफ्त।

* नवीन पुस्तकें *

आदिपुराण समीक्षा प्रथम भाग।

लेखक—बा० सूरजभानु वकील। इसमें आदिपुराण की समीक्षा कर फिर उसकी समालोचना का गई है जो अवश्य देखने योग्य है। इसमें जिनसेन की लेख शैली का नमूना है। की० ।) आना।

आदिपुराण समीक्षा द्वितीय भाग।

इस में गुणभद्राचार्य की लेख शैली का नमूना है। की० ।~) आना।

मिलने का पता—

चन्द्रसेन जैन वैद्य, चन्द्राश्रम–इटा

श्रीपाल चरित्र की समालोचना।

श्रीपाल राजा का नाम श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में बहुत प्रेम के ाथ पढ़ा जाता है और सन्मान की दृष्टि से देखा जाता है इसलिये इसपर विशेष ःप से प्रकाश डालने की आवश्यकता हुई है। यद्यपि दोनों सम्प्रदायों की ओर से ीपाल के जो चरित्र प्रसिद्ध हुए हैं उनमें कहीं कहीं भेद पाया जाता है, तथापि मुख्य स्तु, मुख्य वर्णन दोनों में समान है। आगरा निवासी परिमल नामके कवि ने जो कि ःगम्बराम्नाय के थे—हिन्दी पद्यों में श्रीपाल राजा की कथा लिखी थी। नरसिंहपुर ावासी मास्टर दीपचन्द्रजी ने उसी का हिन्दी अनुवाद तैयार किया है और 'दिग- बर जैन' के ग्राहकों को यह पुस्तक स्वर्गीय सेठ प्रेमचन्द मोतीचन्द की स्वर्गीय माता ेस्मरणार्थ, उसी के खर्च से यह पुस्तक भेंट में दी गई है। जो उक्त पत्र के ग्राहक हीं हैं, उन्हें यह पुस्तक १✓) एक रुपये दो आने में मिल सकती है। पुस्तक का मुद्द ल्ते कहना पड़ता है कि यह मूल्य बहुत ज्यादा है और पुस्तक का विषय-वर्णन खदेश देखते मैं कह सकता हूं कि यदि ऐसी पुस्तकें मुझे मुफ्त में दी जायँ और ाथ ही उनके पढ़ने के एवज में एक अच्छी रकम भी ऊपर से दीजाय तथापि मैं सी पुस्तकें पढ़ना कभी पसन्द न करूं। प्रसिद्ध पुरुषों की तरह मुझे यह पुस्तक मालोचनार्थ मिली है। 'आद्योपान्त पढ़कर किसी पुस्तक की समालोचना करना' हैं समालोचकों का पवित्र कर्तव्य है। इस कर्त्तव्य का पालन करने के लिये मेरी च्छा के विरुद्ध भी मुझे इस पुस्तक को पढ़ना पड़ा है और पुस्तक पढ़कर सविस्तर लोचना करने की मैंने इसलिये आवश्यकता समझी है कि जो व्यक्ति मेरे विचारों अनुकूल हैं उन्हें ऐसी पुस्तकें-निमान्य कथायें-पढ़ने में अपना अमूल्य समय बर- द न करना पड़े।

पुस्तक की भाषा के सम्बन्ध में मैं कुछ कहना नहीं चाहता। भाषा प्रायः शुद्ध । साथ ही उन अलङ्कारों की खूबियां भी इसमें अच्छी दिखाई देती हैं, जो कि भार- के प्राचीन कवियों का सर्वस्व था। मगर जो जेवर कान तोड़ता है वह किस काम ! ?' 'जो सौन्दर्य प्राण लेनेवाला हो उसको कौनसा बुद्धिमान स्वीकार करेगा?, य कहा गया है कि उन्हीं के बहुत से रास तथा प्रन्थ और ब्राह्मणों को बहुत सी ायें, धर्म के नाम से अधर्म, अनीति और कायरता सिखा रही हैं, और श्रीपाल चरित्र इस कथनका पूरा प्रमाण है।

कथा का सार यह है—चम्पापुर के राजा अरिदमन के कुन्दप्रभा नाम की रानी थी और वीरदमन नाम का भाई था। रानी को उत्तम स्वप्न आया, जिससे यह सूचित किया गया कि वह एक चरमशरीरी सब गुण सम्पन्न, धर्म की धुरा, मोक्षाधिकारी पुत्र को जन्म देगी। पीछे से बालक उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'श्रीपाल, रक्खा गया। आठ वर्ष की आयु में उसका उपनयन संस्कार कराया गया और फिर विद्याभ्यास के लिये वह गुरु के घर भेज दिया गया। प्रथम उसे नवकार मन्त्र पढ़ाया गया। "थोड़े ही दिनों में वो यह तर्क, छन्द, व्याकरण, गणित, सामुद्रिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, गायनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, धनुर्विद्या, शस्त्रविद्या, तैरने की विद्या, वैद्यक, कोकशास्त्र, वाहनविद्या, नृत्यविद्या आदि तमाम विद्या और कलाओं में निपुण होगया। आगम और अध्यात्मविद्या का भी वह पारगामी बन गया,, थोड़े ही दिनों में संसार भरकी सारी विद्याय-सारे विज्ञान (Sciences) और सारी कलायें (Arts) सीखी जा सकती हैं और उनमें पूर्णता प्राप्त की जासकती है यह बात तो जैनियों के सिवाय अन्य लोग तो शायद मानने को तैयार नहीं होंगे, परन्तु जैन कवियों का-काल्पनिक शक्तियों की बलिहारी है कि जिन्होंने ऐसी कल्पनायें की हैं। 'जहा न पहुचे रवि वहा पहुचे कवि, यह कहावत शायद उन्हीं के लिये होगी।

विद्याभ्यास कर श्रीपाल माता पिता के पास आया और राज्य कार्यों में चित्त लगाने लगा, थाड़े दिनों के बाद राजा ने श्रीपाल को राज्य देकर धर्मध्यानमें समय बिताना प्रारम्भ किया और कुछ ही दिनों बाद उसका देहान्त होगया। राजा श्रीपाल न्याय और नीति पूर्वक प्रजा का पालन करता था,, यह बात दुष्ट कर्म सहन न कर सका; इसलिये उसने राजा के सुन्दर शरीरमें कुष्ट (कोढ़) रोग उत्पन्न कर दिया। श्रीपाल के शरीर से लोहू राध बहने लगे और उसे बहुत वेदना होने लगी। उसके खास अङ्ग-रक्षक और साथियों का भी-जिसमें प्रधान, सेनापति, मन्त्री, पुरोहित कोतवाल, फौजदार, न्यायाधीश आदि भी शामिल थे-यही कुष्ट रोग होगया। विशेष क्या कहें इनके शरीर से दुर्गन्ध निकलकर जिस दिशा में जाती थी उसी दिशाके लोग भी इसी रोग के चक्कर में आजाते थे। अन्त में शहर के मुख्य मुख्य लोग मिलकर श्रीपाल के चाचा वीरदमन के पास गये। वीरदमन ने श्रीपाल से मिलकर उसे अपने सातसौ पुरुषों सहित-जो कि श्रीपाल के अङ्ग रक्षकादि थे और कोढ़ी होगये थे-नगर से बहुत दूर करके किसी वन में भेज दिया और आप राज्य का कार्य करने लगा।

इसीके दरमियान उज्जयनी नगरी के राजा पहुपालकी दो लडकियों (सुन्दरी और मैनासुन्दरी) का कुछ इतिहास पाठकों के सामने उपस्थित किया जाता है। दोनों कन्यायें सुन्दर थीं, परन्तु बडी का यह दोष था कि वह जैनेतर गुरु के पास पढी थी और पिता के पूछने पर उसने अपने योग्य पतिकी इच्छा प्रकट की थी। छोटी मैनासुन्दरी जैनसाध्वी के पास पढी थी और पिताने जब पति पसन्द करने के लिये उसे साग्रह कहा तब उसने पिता के सामने यह कहने की सभ्यता बताई थी कि पति पसन्द करना 'अधर्म' है। इन दोनों लडकियों से पहिले राजाने पूछा था,—"तुम कौन से गुरु के पास पढना चाहती हो ?,, सुरसुन्दरी ने शिवगुरु नाम के ब्राह्मण पण्डित के पास पढनेकी इच्छा प्रकट की और वह उसके पास भेज दीगई। मैनासुन्दरी ने उत्तर दिया था—"मैं तो जिनचैत्यालय में जिनगुरु के पास से विद्या सीखना चाहती हूं,, इसलिये वह उसको इच्छा अनुसार एक 'आर्जिका, (आर्या जैन साध्वी) के पास पढने के लिये भेज दी गई।

पहिली पुत्री सुन्दरी के विषय में कथा लेखक केवल इतना ही लिखते हैं "ब्राह्मण गुरुने उसको अनेक प्रकार की कलायें (Arts) चतुराइयों (Wisdom) और विद्याएं (Sciences) सिखाई,, दूसरी पुत्री के लिये जरा विस्तार के साथ इस तरह लिखता है—"पहिले ॐकार मन्त्र पढाकर थोडे ही दिनों में परम तपस्विनी आर्जिका ने कुमारिका को शास्त्र, पुराण, सङ्गीत, ज्योतिष, वैद्यक, तर्कशास्त्र, सामुद्रिक, छन्द, आगम, अध्यात्म, नृत्य, नाटक आदि सारी विद्याओं का और अठारह मुख्य भाषाओं का ज्ञान दे दिया, तथा सम्पूर्ण कलाओंमें इसे निपुण बनादी। बादमें उसने (मैना ने) गुरु के पास जाकर चार ध्यान सोलह कारण भावना, दश लक्षण और रत्नत्रयादि धर्म और व्रतोंका स्वरूप सीखा।

यहां सब से पहिले यह प्रश्न उपस्थित होता है कि एक कन्या थोडे ही दिनों में क्या उक्त सब प्रकार की विद्यायें सीख सकती है ? कन्या या जवान के सीखने की बात तो अलग रही, परन्तु आयु भर कोशिश करके भी कोई ऐसी महान् विद्यायें और वे भी एक दो नहीं सब प्रकार विद्यायें सीख सकता है ? दूसरा प्रश्न यह है कि छोटीसी कन्या को आर्जिकाने शास्त्र, आगम, अध्यात्म सारे तो सिखा दिये थे फिर गुरु के पाससे ध्यान दशलक्षण आदि धर्म का स्वरूप सीखना कैसे अवशेष रह गया था क्या अध्यात्म में और शास्त्रों में धर्म का स्वरूप गर्भित नहीं होजाता है ? शायद उस जमाने में शास्त्र और अध्यात्म भिन्न भिन्न तरह के होते होंगे।

एक दिन राजा जब अपने मन्त्रियों सहित बैठा था तब उसने अपनी पुत्रियों को बुलाया और उनके सब सामर्थ्य की परीक्षा करने लगा। उसने पहिले अपनी बडी

लड़की सुन्दरी को जो ब्राह्मण गुरु के पास पढ़ी थी और कथाकार के कथानुसार वह सब कलायें, सब विद्यायें, सब चतुराइयां, जानती थी पूछा—"पुत्री तेरा ब्याह किस के साथ करूं ? तुझे कौनसा पति पसन्द है ?,, सुन्दरी ने उत्तर दिया—"मैं शाम्बीपति हरिवाहन राजा को जो सर्व गुण सम्पन्न, रूपवान, और चतुर है पसन्द करती हूं,, राजाने इस बात को स्वीकार किया और थोड़े ही दिनों में कौशाम्बी पति के साथ उसका विवाह कर दिया। जब राजा ने छोटी लड़की मैनासुन्दरी से भी यही प्रश्न किया था, तब जैन गुरु के पास से सीखी हुई यह कन्या प्रथम तो यह विचार करने लगी—"पिता ने ऐसे निष्ठुर शब्द कैसे उच्चारण किये अफसोस ! ऐसा प्रश्न करते इनको लाज भी नहीं आई शीलवान कन्या क्या कभी अपने मुंह से पति मांग सकती है ?, सच बात तो यह है कि जिन लोगों ने जिनन्द्रदेव को नहीं पहिचाना है वे ही ऐसे प्रश्न कर सकते हैं राजाने दूसरीबार फिर वही प्रश्न किया तब वह मन ही मन सोचने लगी—"हाय राजा की बुद्धि कहां गई है, जो मुझसे इस प्रकार का निर्लज्जता पूर्ण प्रश्न कर रहा है। यदि इसने कभी मेरे जैन गुरु के वचन सुन होते तो ऐसे निर्लज्ज शब्द इसके मुंह से कभी नहीं निकलते,, फिर प्रकट रूपसे बोली 'हे पिता' मैंने गुरु के मुहसे सुना है और शास्त्रों में पढ़ा है कि जो कन्याए कुलवती होती हैं वे कभी अपने मुंह से पति नहीं मांगती हैं। माता पिता स्वजन सम्बन्धी या गुरुजन जिस पुरुष के साथ कन्याओं को ब्याह देते हैं वही पुरुष उस कुलवती लड़की के लिये तो कामदेव के समान होता है। पीछे वह पुरुष चाहे अन्धा हो, बहरा हो काना हो, लूला हो, लंगड़ा हो, कोढ़ी हो, रोगी हो रङ्क भी, पाप हो, वृद्ध हो, कुरूप हो, मूर्ख हो, निर्दय हो, निर्लज्ज हो अथवा चाहे सब गुण सम्पन्न हो, कुमारिका का तो वही पति उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है। हे पिता ! अपने मुख से पति मांगना निर्लज्जता का काम है—लोकाचार के विरुद्ध है। सुरसुन्दरी ने पति पसन्द किया यह काम बुद्धिमत्ता का नहीं है, परन्तु इसमें बिचारी का इस का कोई अपराध नहीं है। यह तो कुगुरु से इसने जो शिक्षा प्राप्त की है उसी का प्रभाव है गुरुजनों के हाथ से कभी पुत्री का अहित होना सम्भव नहीं है और शायद ऐसा हो भी जाय तो अपने पूर्वोपार्जित कर्म का फल समझ प्राप्त पतिकी सेवा करना चाहिये। अतः आपकी आज्ञाकार है। जिसके साथ आप चाहें उसी के साथ मेरा ब्याह कर दें।

बहुत हुआ, जैन धर्म नीति की उत्तमता की हद होगई। मैंने तो आज तक एक भी ऐसा नाम्य नहीं पढ़ा जिसमें यह आज्ञा दी गई हो कि यदि पिता पुत्री

का पति पसन्द करने की आज्ञा दे तो पुत्री पिता की निन्दा समझे और अगर शास्त्र की ऐसी आज्ञा भी कहीं देखने में नहीं आई जिसमें यह लिखा हो कि अंधे रोगी, नाच, निर्दय या निर्बल पुरुष के साथ पिता कन्या को देना चाहे और कन्या जानती हुई भी उससे बचने का प्रयत्न न करे नाच क्या खूब व्याह नहीं होते हैं पर पहिले ही आनेवाली बला से बचने का प्रयत्न करना तो 'अधम, होगया और जान बूझ कर कुए में गिरना धर्म, ठहरा।

बिचारी सुरसुन्दरी ने पिता की आज्ञानुसार पति पसन्द किया (उसने ऐसा दुराग्रह नहीं किया था कि मुझे यही पति चाहिये) और पर भी उसने ऐसा पसन्द किया कि जिसमें बल (जो क्षत्रियोंका भूषण है) और गुण (जो मनुष्यता का लक्षण है) दोनों मौजूद थे। तथापि यह जैन कथाकार उसको श्राप देता है और ऐसी सुन्दर एस दशी करता जिस गुरुने सिखाया उस गुरु को कुगुरु बनाता है और सोमा बा' हद का मुखाता पूर्ण शील की व्याख्या करने वाली छोटी लड़की जो कुछ बोलती है उसी में उसे उत्कृष्टता और पवित्रता दिखाई देती है।

इस चरित्र को लिखते समय शायद लेखक को क्षत्रियों के 'स्वयम्वर, वाले रिवाज का खयाल नहीं होगा या वह ऐसे अनार्य देश का रहने वाला होगा कि जहां एक भी कर्मवीर क्षत्री का घर नहीं होगा। अथवा मध्यकाल में जैनियों और हिन्दुओं ने स्त्रियों के पैरों में पराधीनता की जो बेड़ी डाली थी वह उसे ढीली मालूम हुई होगी इसलिये उसने सख्त बनाने का यह प्रयत्न किया होगा। चाहे कुछ भी हो परन्तु अपनी अज्ञानता को या अपनी चाल को जैनधर्म की आज्ञा के नाम से प्रचार करने का प्रयत्न करना बड़ी भारी धृष्टता है।

श्रीपाल, चरित्र के जन्मदाता की धृष्टता यहीं पूरी नहीं होजाती है। उसने जिस तरह से और जिस पुरुष के साथ उस 'अज्ञान कन्या, का व्याह करवाया है वह तो बहुत ही निन्द्य और त्रासदायक है। 'अज्ञान कन्या, मैं इसलिये कहता हूं कि अर्जिका ने वास्तव में उसको दुनिया की किसी भी विद्या (Science) और कला (Art) का ज्ञान नहीं दिया था। यह बात सहज ही में अनुमान से जानी जासकती है। जैनशास्त्रों की स्पष्ट आज्ञा है कि कोई जैनसाधु तैरनेकी विद्या, नाचनेकी विद्या, सङ्गीतशास्त्र, वैद्यकशास्त्र इत्यादि नहीं सिखा सकता है इसलिये यह तो स्पष्ट हो गया कि कवि ने जिन विद्याओं की दुनियवी शास्त्रों की गिनती कराई है वे साध्वीने तो कभी नहीं सिखाई होंगी। हां उसने तो यह धर्म विद्या सिखाई होगी कि कमा पोन ढांककर बैठे रहो और इस धर्म की उत्तमता का गर्व कर दूसरे धर्म के लोगों को

मूर्ख, मिथ्यात्वी कहने में आनन्द मानते रहे और इस शिक्षा का ही कथाकार ने शा-
यद 'सदज्ञान' समझा था।

अस्तु—राजा पुत्री के उत्तर से बहुत नाराज हुआ, और मैनासुन्दरी के लिये कोई अयोग्य वर खोजने के लिये मुसाफिरी के लिये रवाना होगया। फिरता फिरता वह उसी वन में जा पहुंचा—जहां राजा श्रीपाल अपने साथियों सहित रहता था। इन दोनों राजाओंमें जो वार्तालाप कराया है वह लेखक कैसी बुद्धि रखता था सो साफ बता देता है। राजा पहुपाल ने श्रीपाल को कहा—"मैं तो यहां वन क्रीडा करने के लिये आया हूं परन्तु आप यहां किस लिये आकर रहने लगे हैं और क्यों जङ्गल में नगर सा बना रक्खा है?" श्रीपाल ने उत्तर में आद्योपान्त अपनी कथा सुनाई उससे पहुपाल, प्रसन्न हुआ और बोला—मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। (एक राजा के बड़े भारी कष्ट की बात सुन कर दूसरा राजा प्रसन्न हो, यह बात तो बिल्कुल अश्रुत पूर्व है। अर्थात् पहिले कभी ऐसा नहीं सुना गया था। हम तो समझते हैं दूसरे जैन ग्रन्थकारों ने भी ऐसी बात तो कभी नहीं लिखी होगी, जैनग्रन्थकारों का क्यों? बिल्कुल थोड़ी अक्ल वाला भी कभी ऐसी बात नहीं लिखेगा) "तुम्हें जो कुछ इच्छा हो वह मुझ से मांग लो," (एक राजा दूसरे व्यक्ति को और वह भी राजा के समान व्यक्ति को कहे—"मांगलो, यह भी लेखक की बुद्धिमत्ता की बलिहारी है) श्रीपाल ने कहा—"आप प्रसन्न होकर वरदान देते हैं तो अपनी पुत्री 'मैनासुन्दरी' मुझे दीजिये," (वाह क्या खूब! दो चार मिनिट के वार्तालाप में ही श्रीपाल ने एकदम एक राजा से स्वयं कोढ़ी होते हुए उसकी लड़की मांगने की हिम्मत की, क्या ऐसा भी जमाना था? ×) पहुपाल ने कहा—"तुम को मैंने अपनी छोटी लड़की मैनासुन्दरी दी। बस अब शीघ्र ही मेरे साथ चलो और मैनासुन्दरी का पाणि ग्रहण कर सुखी बनो" क्षत्रिय ब्राह्मण तो क्या मगर एक शूद्र के घर में भी कभी इस तरह कन्या की याचना और स्वीकारता नहीं होती है, तब एक क्षत्रिय का—सामान्य क्ष-

× श्रीपाल ने लड़की मांगी सो तो ठीक परन्तु लड़की भी कैसी? मैनासुन्दरी—जिस पर कि राजा कुपित होरहा था। क्या श्रीपाल को उस समय अवधिज्ञान होगया था? या और कोई बात थी कि जिससे उसने मैनासुन्दरी को मांगा। हमारे ख्याल में तो लेखक के दिल में मैनासुन्दरी को प्रपञ्च में फँसाने का धुन सवार थी इसीलिये उसने पूर्वापर का विचार किये बिना ही झट श्रीपाल के मुंह से मैनासुन्दरी की याचना के शब्द कहला दिये। (अनुवादक)

निय नहीं एक राजा की—यह रीति अज्ञात लेखक के मनोराज्य के सिवा दूसरे स्थान पर कैसे होसकती है ?

मन्त्री शायद बुद्धिमान था (सम्भव है कि उसने जैनधर्म नहीं सीखा हो) उसने राजा से प्रार्थना की—"हे नाथ ! बड़ा भारी अनर्थ होरहा है इसके पहिले बहुत विचार करना चाहिये। कहां आपकी सोलह वर्ष की सुकुमार कन्या और कहां यह अंग-पाग हीन गलित शरीर कोढ़ी? ऐसा अकार्य्य करना आपके लिये सर्वथा अनुचित है। इस कार्य से लोग निन्दा करेंगे और आप पर हँसेंगे। कन्या अपने माता पिता के आधीन होती है इसलिये उसके हिताहित का विचार करना इनका (माता पिता का) पहिला कर्तव्य है। यदि लड़की ने कुछ भूल की हो तो भी उसे क्षमा करना चाहिये। स्त्री जाति से वैर लेना क्षत्रिय धर्म नहीं है। नीतिशास्त्र का वचन है—बालक, वृद्ध, स्त्री, निबल, पशु, आधीन, शरण में आया हुआ और भगोड़ा इतनों पर क्षत्रीको कभी क्रोध नहीं करना चाहिये,, (सम्पूर्ण पुस्तक में लेखक ने किसी जैन गुरु या जैन श्रावक के मुंह से ऐसे उदार विचार नहीं कहलाये हैं)

मन्त्री की बात से राजा कुपित हुआ और मन्त्री चुप होगया। राजा श्रीपाल को लेकर अपने देश में गया और पति कैसा है उसका मैनासुन्दरी को सच्चा वृत्तान्त सुनाया। * लेखक लिखता है—"पिता के वचन सुनकर कुमारी चित्त में बहुत प्रसन्न

* इस हुई विचार पितृ प्रेम का खून हुआ। संसारके इतिहासमें आजतक एक भी ऐसी घटना नहीं हुई जिससे यह सोचाजाता कि पिता अपनी सन्तान प्रति इतना क्रूर होसकता है। इतिहासकारों ने औरङ्गजेब को बहुत ज्यादा क्रूर बताया है, परन्तु इतना क्रूर तो वह भी न होसका कि अपनी सन्तान का सर्वनाश कर देता। एकबार औरङ्गजेब का लड़का किसी कारण वश औरङ्गजेब से प्रतिकूल होगया। औरङ्गजेब ने किसी तरहसे यह अफवा सुनी कि मुहम्मद मारा गया है उसका कलेजा दहल गया। पत्थर के कलेजेमें दो चार आंसू की बूंदें टपक पड़ीं और सुनिये औरङ्गजेब ने शाहजहां को आगरे में कैद करके रख दिया और सताया, अपने सब भाइयोंका खून कर डाला, जिसके सुनने से शाहजहां आधा पागल होगया, परन्तु अन्त में औरङ्गजेब ने जब शाहजहां के पास गया तब शाहजहां अपने सब दुःखों का भूल गया और उसने औरङ्गजेबको गलेसे लगा लिया पाठक विचार सकते हैं कि अपने साथ इतनी क्रूरता का बर्ताव करने वाली सन्तान को भी पिता जब क्षमा करके गले से लगा लेता है, तब कैसे यह अनुमान किया जा सकता है, कि मैना के केवल इतना कहने पर

अनातिपूर्ण, अधममय, आज्ञा करे—उस आज्ञा का चुपचाप पालन करना ही सेवक का (पत्नी का, पुत्र का, प्रजा का अथवा छोटे दर्जे के नौकरों का) कर्तव्य मानना, धर्म या वफादारी मानना कितना लज्जास्पद है? यह क्या कम पतित अवस्था है? और मजा यह है कि ऐसी अवस्था, ग्रन्थकर्त्ता के कथनानुसार जिस समय में थी वह समय 'स्वर्ण युग, के नाम से प्रसिद्ध किया जाता है। हमें कहने दो कि ऐसे 'स्वर्ण युग, की अपेक्षा आज का 'कलियुग, हजार दर्जे अच्छा है। कि जिसमें राजा के अन्यायाचरण के विरुद्ध प्रजा और अधिकारी लोग प्रतिकूल खड़े हो सकते हैं। कुछ समय पहिले इन्दौर के महाराज ने एक स्त्री पर दूसरा विवाह किया। मन्त्री सत्यनारायण चंदावरकर ने इसका विरोध किया, परन्तु उनका कुछ वश नहीं चला इसलिये वे चुप रहे और उन्होंने कामसे इस्तीफा नहीं दिया। सर्वसाधारण ने इस भावना के लिये खुल्लमखुल्ला उनको उपालम्भ दिया और इस उपालम्भ देने का अपना 'कर्त्तव्य, समझा। राजा पहुपाल के राज्य में क्या एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो राजा को इस कार्य में मुह मोड़ने को विवश करता और यदि राजा नहीं मानता तो राजा की प्रजा बनने से नहीं तथापि राजा का एक कार्य्यकर्त्ता बनने से तो मुह मोड़ता और नैतिक धर्म बताता। जिस समय में एक साधारण भावना पर ही प्रजा जिसको युग बना सकती है उस समय को 'स्वर्ण युग, कहना छोड़कर जिस समय में भयङ्कर कृत्यकी भी कोई प्रतिकूलता नहीं कर सकता था ऐसे समय को 'स्वर्णयुग, कहना हम तो अपनी मान हानि समझते हैं।

सुन्दर कन्या और कोढ़ी दोनों का विवाह क्या था एक फारस था। लोग उस फारस को देखने के लिये इकट्ठे हुए। कई उदार और गम्भीर पुरुषों के हृदय को इस अन्याय से दुःख हुआ। लेखक कहता है—"श्रीपाल राजा के हर्ष का तो कुछ ठिकाना ही नहीं था" कथन बिलकुल ठीक है। जिस रत्न की प्राप्ति के लिये, हजारों प्रयत्न करने पड़ते हैं, मौके पर खून भी बहाना पड़ता है, ऐसा स्त्री रत्न कोढ़ा अवस्था में बिना प्रयास जिसको मिल जाय वह, यदि प्रसन्न नहीं हो तो और क्या हो? एक युवती का जीवन नष्ट करने में एक सज्जन पुरुष को आनन्दित होना (और इस कथा का लेखक गवाह है कि होना ही चाहिये) कितना बेजोड़ और अन्यायपूर्ण है? आनन्द माननेवाला पुरुष भी कोई साधारण नहीं बल्कि बड़ा भारी विद्वान कि जिसने धार्मिक और व्यावहारिक ज्ञान का बहुत अच्छा अभ्यास किया था जो "चरम शरीरी," था और जिसे उसी भव से मोक्ष होनेवाला था ऐसे पुरुष के लिये यह कहना कि एक अबला का जीवन नष्ट करने के कार्य्य में उसे 'आनन्द' हुआ और ऐसे

आनन्द को अच्छा बताना कितनी भ्रष्ट नीति है? यदि ऐसे नीति ज्ञान को जैनधर्म के ग्रन्थ या काव्य कर्ता लोग उत्तम बताते हों और उसका अभिमान रखने हों तो रक्खें। मैं तो ऐसी शिक्षा को महापाप बताऊँगा और जो जैसे खोल कर अपने हिताहितका विचार करनेवाले होंगे उनको ऐसे ग्रन्थोंसे दूर रहनेकी सम्मति दूंगा।

फारस खतम हुआ लग्न क्रियायें पूरी हुईं। वर और कन्या अपने निवास स्थान को गये। लेखक लिखता है—"राजा ने पुत्री को बहुत सा द्रव्य और वस्त्रा लङ्कार दिये। एक हजार दास एक हजार दासियां हजार हाथी, घोड़े, रथ प्यादे, गायें, भैंसें, ग्राम पुर, पट्टण आदि दहेज में दिये,, हजार बिना तो बात भी नहीं। हजारों हाथी, घोडे दहेज में देने वाला राजा कितना बड़ा होगा?

श्रीपाल नगर छोड़कर मैनासुन्दरी सहित जहां अपना निवास स्थान था वहां गया। वहां श्रीपाल मैनासुन्दरी को कहने लगा—तुम्हारे मुख की ज्योति देखकर चन्द्रमा की रोशनी फीकी पड़ती है, तुम्हारे मधुर शब्द सुन कोकिला मद गलित होती; तुम्हारे नेत्र युगम को देख हरिणी लजाती है; तुम्हारे गालों को देख चिकसत गुलाब सिर झुकाता है। तुम्हारी शुक कैसी नासिका, अरुण कुसुम के समान ओष्ठ और मुक्त माल के समान दन्त पंक्ति बहुत ही सुन्दर मालूम देते हैं। (और अभी ले खक के। वर्णन में कसर मालूम हुई इसलिये आगे बढ़कर कहता है) कंचन कुम्भ के समान कुच, सिंह के समान कमर, कदली वृक्ष के समान जङ्घा और स्पर्श बहुत रूक्ष होने पर भी मृदु, बहुत ही सुन्दर दिखाई देते हैं। और मैं कुरूप, कुष्ठ व्याधि से पी डित हूं मेरा शरीर दुर्गन्धि से भरा हुआ है। अतः तुम मुझ से दूर रहो। तुम्हें देख कर मुझे अत्यन्त करुणा आती है। (आनन्द हुआ था फिर यह करुणा कहां से आ गई?) मुझे दुःख है, कि तुम्हारे समान कोमलाङ्गी को मुझसा पति मिला। (पति मिला क्यों कहते हो? यूं क्यों नहीं कहते कि मैं ने स्वय तुम से व्याह करने की या चना कर पाप किया है। दैव का दोष नहीं है; परन्तु अपना ही दोष है और वह भी चरम शरीरी, का दोष है साधारण मनुष्य का नहीं।)

मैनासुन्दरी के मुख से सतीत्व के जो शब्द कहलाये हैं उनके विरुद्ध हमें कुछ नहीं कहना है। क्योंकि अब तो वह अपनी इच्छानुकूल स्वामी पसन्द करके पक्की हुई थी। दूसरे दिन प्रातःकाल ही वे चैत्यालय में गये। वहां एक निर्ग्रन्थ मुनि से मैनासुन्दरी ने पूछा—"कोई ऐसा यत्न बताइये कि जिससे मेरे पति का रोग नष्ट होजाय,, मुनि ने उत्तर दिया—"यदि वह सम्यग्दर्शन सहित पांच अणुव्रत और सप्तशील (तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत) अङ्गीकार कर यथाविधि सिद्ध

चक्र व्रत साधन करे, तो इसके सारे रोग शोक दूर होजायँ,, सिद्धचक्र की व्याख्या पूछी पर मुनि ने अमुक दिनों में तप और सामायिकादि करने को कहा और यह भी कहा कि आठ वर्ष पर्यन्त इस तरह से तप करके फिर सात क्षेत्रों में द्रव्य खर्चना चाहिये। यहां मैं व्रतों के विरुद्ध कुछ कहना नहीं चाहता। तप का जो स्वरूप मैं ने हितेच्छु में प्रकाशित किया है उसके अनुसार तप करने से अवश्यमेव लाभ होता है यदि यहां ऐसा बताया जाता कि स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, ध्यान और उपवास यथा विधि करने का नाम तप है, और प्रत्येक की अच्छी तरह से विस्तार पूर्वक खूबियां समझाई गई होतीं तो बहुत ही श्रेष्ठ होता और पाठकों को उससे बहुत कुछ लाभ पहुंचता; परन्तु लेखक ऐसा न कर सका। यदि इस तप की व्याख्या से पाठक यह समझें कि थारें बन्द कर उपवास किये करना और मन्दिरों का ढेर लगाये जाना ही तप है, तो मैं सोचता हूं कि ऐसे ग्रन्थों की अपेक्षा ग्रन्थों का न होना ही उत्तम है। इस व्रत की आज्ञानुसार प्रति मास आठ उपवास करने से और अगाध आत्मिक शक्ति की भावना भाने से मनुष्य-करने वाला मनुष्य-रोग मुक्त हो सकता है। इस में कोई असम्भवता नहीं है * परन्तु उपवास कोई और करे और रोग किसी और ही का मिट जाय यह बात तो सर्वथा असम्भव है। इस कथा में तो कथा लेखक कहता है कि मैनासुन्दरी ने आठ वर्ष तक आठ २ दिन के आठवार उपवास करने के बजाय केवल एकवार ही उपवास किये थे। वह नित्य प्रति प्रभु की प्रतिमा का पूजन कर गन्धोदक लाती थी और उस गन्धोदक को श्रीपाल व उसके ७०० अन्य साथियों पर छिड़कती थी इससे केवल आठ दिनमें ही श्रीपाल अपने ७०० सहचारियों सहित रोगमुक्त होगया और पहिले की अपेक्षा भी विशेष कांतिवान साक्षात् कामदेव के समान रूपवाला बन गया। यदि यह बात सच्ची हो, यदि यह सम्भव हो कि एक स्त्री के आठ दिन तक उपवास करने से उसका पति उसके ७०० साथियों

* 'अमृतसागर, नाम के एक वैद्य ग्रन्थ में लिखा है, कि विरुद्ध अन्न पान खाने पीने से, चिकने और भारी पदार्थ खाने से, मल मूत्रादि का प्रवाह रोकने से, बहुत आहार करने से, जुलाब लेने के बाद कुपथ्य का सेवन करने से, मछलियां-विशेष खाने से और स्त्री सेवन से कुष्ट रोग उत्पन्न होता है। मेक फेडन पाश्चात्य विद्वान् जो प्राकृतिक उपचार से बिना औषधि के रोग मिटाता है कहता है कि उक्त प्रकार के कारणों से जो व्याधि [illegible] है, वह उपवास करने से, खुली हवाका सेवन करने से, कसरत, तन्दुरस्ती के [illegible] होने से, मिट सकती है।

सहित अच्छा हो सकता है, तो आज भी यह बात सत्य क्यों नहीं होती ? क्या आज भी छह के उपवास करनेपर दूसरा रोग शुरू नहीं होजाता ? आठ दिन तक उपवास करना, जिनवर भगवान की पूजा करना और नित्य प्रति गन्धोदक लाकर बीमार पर छिड़कना आज हरएक कर सकता है। (यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि गुरु ने यह विधि आठ वर्ष तक के लिये बताई थी) तो फिर आज जैनी लोग तथा साधु लोग भी डाक्टरों या वैद्यों की दवा किस लिये खाते हैं ? क्यों व्यर्थ पैसे को धूल में मिलाते हैं ? और क्यों बहुत दिनों तक रोगी रहते हैं ? अङ्गरेजी अथवा दवा में प्राय " स्पिरिट तो मिली हुई ही होती है फिर ऐसी दूषित दवा क्यों खाते हैं ? दिगम्बर और श्वेताम्बर परोपकारी धनिक (स्वर्गीय सेठ माणकचन्द भाई अमृत से स मान) क्यों मुफ्त दवा देने वाले औषधालय स्थापन करते हैं ? और क्यों उनको चिरस्थायी बनानेके लिये लाखों रुपये बर्बाद करते हैं ? अच्छा मार्ग तो यह है कि सारे रोगियों को 'सिद्धचक्र मन्त्र, करवाना और उन्हें बगैर ही खर्चे रोगमुक्त कर कामदेव के समान रूपवान बनाना इससे बहुत बड़ा लाभ होगा कि जैनधर्म की खूब प्रभावना होगी। इस व्रत में आठ दिन तक बराबर उपवास करना भी जरूरी नहीं है क्योंकि ग्रन्थकर्ता ने साफ लिखा है कि बेला तेला करने से भी काम चल सकता है। हम आशा करते हैं कि हमारे जैन साधु और ग्रन्थ लेखक आज से अपने खास इलाज (सिद्धचक्र मन्त्र) के द्वारा संसार को नीरोग बनाने का उद्यम कर अपने मान हुए धर्म की महिमा बढ़ायेंगे और कुष्ट रोग, रक्त पित्त का रोग, क्षय का रोग और भगन्दर का रोग जो असाध्य माने जाते हैं इस मान्यता को झूठी ठहरायेंगे। हमें यह आशा तो जरूर रखना ही चाहिये कि हमारे साधु और जैन कथा लेखक कभी किसी अस्पताल या औषधालय के द्वार पर नहीं जायँगे।

आठ दिन तक मैनासुन्दरी ने व्रत का पालन कर गन्धोदक के छींटे दिये जिससे श्रीपाल और उसके साथी अच्छे होगये। कुछ दिनों के बाद श्रीपाल की माता के लिये पुत्र का वियोग बहुत असह्य होगया और वह इससे मिलने के लिये उत्सुक हुई। कथाकार लिखता है कि वह पुत्र के वियोग से रात दिन बेचैन रहती थी और उससे मिलने के लिये तरसता रहती थी, परन्तु प्रजा हित के लिये वह सब कुछ सहती थी। यद्यपि उसका पुत्र से बहुत ज्यादा स्नेह था इतना स्नेह था कि उसके न मिलने से उसका शरीर सर्वथा क्षीण होगया था तथापि प्रजा हितैषिणी माता ऐसी स्थिति में भी पुत्र को बुलाकर अपने पास रखना नहीं चाहती थी क्योंकि जिस काम के करने से अपना मन प्रसन्न होता है, परन्तु सर्व साधारण को दुःख पहुंचता

है यह काम कभी महान् आत्मायें नहीं करतीं,, परन्तु कथा लेखक की सामान्य बुद्धि (Common sense) का अन्दाजा इसमें लगाया जा सकता है कि प्रजाहित के लिये पुत्र को राज्यमें बुलाना अच्छा नहीं लगा सो तो ठीक ही हुआ, परन्तु यदि यह पुत्र के पास जाकर रहने लग जाती या उसमें जाकर मिल आती तो प्रजा की क्या हानि होती थी ? मगर हमारे इस कथा लेखक की जैन दृष्टि से पुत्रवत्सलता कुछ और ही मालूम हुई होगी इसी लिये उसने इस बात का करना अच्छा नहीं समझा थाँ। स्वकाय रक्षिणी माता ऐसा साहस तो नहीं कर सकी, परन्तु एकवार एक जैनमुनि आये उनसे उसने अवश्यमेव अपने पुत्र की खबर पूछी था। "परमदयालु शत्रु और मित्र दोनों को सामान्य दृष्टि से देखने वाले परम दिगम्बर मुनि ने अपने अवधिज्ञान के द्वारा श्रीपाल का सारा आनन्ददायक समाचार कह सुनाया, यह सुनकर रानी ने अब अपने पुत्र से मिलने में कोई हानि नहीं देखी इसलिये अपने देवर की आज्ञा लेकर पुत्रवत्सला माता श्रीपाल से मिलने के लिये गई। यहां यह बात भी विचारणीय है कि संसार और संसारके सब सम्बन्धों से मुक्त मुनिको अपनी अवधिज्ञान ऐसे प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये उपयोग करना उचित था या अनुचित ? आगे हम यह देख सकेंगे कि इस कथा में कथाकार ने कई स्थानोंपर अवधिज्ञानियों से इसी तरह श्रीपाल की सेवा कराई है अगर मुनि इस प्रकार सांसारिक झगड़ों से मुक्त नहीं रह सकते थे तो फिर विचारे वल्कलोंने क्या अपराध किया था कि उनका सर्वथा त्याग कर दिया गया था।

रानी पुत्र के पास गई। पुत्रवधु ने उसका बहुत सत्कार किया श्रीपाल ने माता से कहा कि यह सब प्रताप मैनासुन्दरी का है। उस समय में रानी ने जो कुछ आशीर्वाद दिया वह भी खास विचार करने योग्य है। उसने कहा—" हे पुत्री ! तू सैकड़ों रानियों में पट्टरानी होना,, याद रखना चाहिये मैनासुन्दरी श्रीपाल को नवजीवन और विपुल द्रव्य प्रदान करने वाली पहिली ही पत्नी है ग्रन्थकार ने इससे पहिले श्रीपाल के व्याह का उल्लेख नहीं किया है इससे यह तो राज्य नियमानुसार कि पहिली स्त्री ही पट्टरानी होती है स्वयं सिद्ध है कि मैनासुन्दरी ही श्रीपाल की पट्टरानी थी मगर यह आशीर्वाद तो कुछ और ही कहता है इसका अभिप्राय तो यह है कि "तू ने श्रीपल को नवजीवन प्रदान किया है इसके बदले में तेरी छाती पर सैकड़ों (यह कहो हजारों क्योंकि लेखक ने आगे चलकर कथा के नायकका हजारों स्त्रियों से सा [illegible] या दिया है) सौत [illegible] होवे !,, यह कैसी कृतज्ञता ! कैसे [illegible] कैसी आदर्श शिक्षा [illegible]

मान्य पुरुष की नहीं मगर 'चरमशरीरी,, उसी भवमें मोक्ष जानेके लिये निमित्त हुए पुरुष की माता थी।

कुछ काल के बाद मैनासुन्दरी के पिता पुहुपाल के हृदय में अपनी पुत्री के देखने की इच्छा उत्पन्न हुई उसने भी श्रीपाल की माता के समान ही पुत्री के वियोग का दुःख होने लगा और उसका शरीर सूखने लगा यह देख कर मैनासुन्दरी की माता इसका इलाज पूछने के लिये जिन मन्दिर में मुनिराज के पास गई। मगर वहां जाकर उसने कौतूहल देखा वह क्या देखती है कि मुनिराज के पास उसकी लड़की मैनासुन्दरी बैठी हुई है और उसके साथ ही बराबर में एक खूबसूरत नौजवान (जो श्रीपाल था) बैठा है रानी ने यह सोच कर कि मैनासुन्दरी ने शायद अपने कोढ़ी पति को छोड़ कर इससे फकड़ नौजवान से दोस्ती कर ली है, मैनासुन्दरी को हजारों गालियां मन ही मन दीं। पुत्री ने माता को देखकर प्रणाम किया और सारा हाल कह सुनाया; श्रीपाल ने भी उसके कथन की पुष्टि की। सुन कर रानी को सन्तोष हुआ और अपने जामाता-जमाई-और पुत्री को लेकर महल में गई। राजा भी इनकी उत्तम स्थिति देखकर सन्तुष्ट हुआ। कुछ दिनों के बाद श्रीपाल के मन में अपना राज सँभालने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। मगर अपने चचा के हाथ में गया हुआ राज्य सीधी तरह से मिलना कठिन समझ उसने देशाटन कर धन जन एकत्रित करने के बाद चचा से युद्ध कर अपना राज्य लेने की ठानी। मैनासुन्दरी ने अपने पति की बात पसन्द की, परन्तु साथ ही उसने पति के सङ्ग जानेकी भी इच्छा प्रगट की। कथाकार ने यद्यपि आगे चलकर लिखा है कि अकेले श्रीपाल ने हजारों आदमियों को परास्त किया था; परन्तु यहां श्रीपाल के मुख से कहलाया है कि—"परदेश में सहायकों के बिना स्त्री को लेजाना उचित नहीं है' पतिव्रता स्त्री ने नम्रता सहित आग्रह पूर्वक साथ जानेके लिये विनती की। इस नम्र प्रामाणिक और न्याय सङ्गत विनती के उत्तरमें स्त्रीके भारी उपकार ऋण में दबे हुए श्रीपाल के मुहसे लेखक ने कैसे मूर्खता पूर्ण शब्द कहलाये हैं कि जिन्हें पढ़कर एक सामान्य मनुष्य भी नायक से घृणा करने लगेगा। श्रीपाल ने कहा—"स्त्रियों का तो स्वभाव ही ऐसा है। हजार उपदेश दो तो भी स्त्रियां अपनी आदत नहीं छोड़तीं, कार्य्याकार्य्य का विचार करना तो ये जानती ही नहीं बस मुझे छोड़ दो" वाह ! कथा का नायक कैसा सज्जन है?

अन्त में हारकर मैनासुन्दरी ने श्रीपालको अकेला जानेकी सम्मति दी। रवाना होते वक्त मैनासुन्दरी से कवि कहलाता है—"यदि आप जाते हैं तो जाइये; परन्तु

इस दासी के पास से दासत्व कराने की बात सदा ध्यान में रखना × × × ×
मिथ्या देव, गुरु और धर्म का कभी विश्वास न करना और खास कहने की बात यह
है कि स्त्री जाति का स्वभाव बहुत ही चपल होता है इसलिये किसी स्त्री पर विश्वास
न करना। बड़ी को माता युवती को बहिन और छोटी को पुत्री समझना और आज
बारह वर्ष से बराबर बारह बरस गिनकर इसी तिथि को वापिस घर लौट आना। यदि
आप अवधी को नहीं आयँगे तो मैं यवनी को दीक्षा ले लूंगी" इन शब्दों में से प्रत्येक
शब्द विलक्षणतापूर्ण है। सारी नीति और सम्पूर्ण अध्यात्मशास्त्र के ज्ञाता पति को स्त्री
(जो स्वयं भी आध्यात्मिक ज्ञान में पूर्ण बताई गई है) पति पर अविश्वास करके उस
का शील पालने की शिक्षा देती है यह एक आश्चर्य है! स्वयं स्त्री होते हुए भी उस ने
स्त्रियों की मान हानि करने वाले शब्द "स्त्री जाति चपल होती है इसलिये किसी का
विश्वास नहीं करना" उच्चारण किये यह दूसरा आश्चर्य है! स्त्री का अर्थ है दासत्व
करने वाली दासी' ऐसी व्याख्या भी पवित्र जैन धर्मानुयायी के सिवा यदि कोई दू
सरा लेखक लिखता तो वह मिथ्यात्वी, मूर्ख, अविवेकी गिना जाता। खैर कुछ भी
हो मगर इतना उपदेश मिलने पर भी—शीलव्रत पालन करने की खास सूचना मि
लने पर भी—यह चरमशरीरी महात्मा तो ऊपरी २ हजारों स्त्रियों का पाणि ग्रहण
करता ही गया। यह तो श्रीपाल की लियाकत का एक अच्छा नमूना है। जिसके
रूप का श्रीपाल ने स्वयं वर्णन किया है जिसके प्रत्येक अङ्ग की शोभा का वर्णन क
रते श्रीपाल स्वयं नहीं लजाया जिसके प्रताप से ही स्वयं जीवित रहा और नवयौवन
पाया ऐसी सोलह बरस की पतिपरायण स्त्री की छाती पर हजारों सौतों का साल
रखना भला चरमशरीरी श्रीपाल के सिवा अन्य कौन पुरुष कर सकता था? अस्तु।

श्रीपाल अकेला ही रवाना होगया। अनेक वन, पर्वत, गुफा, सरोवर, झाड़,
नदी, शहर आदि से गुजरता हुआ पैदल ही चलकर वत्सनगर में पहुंचा। वहां च-
म्पक नामक वन में उसने किसी नवयुवक को जो कि वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत होरहा
था—मन्त्र जपते हुए देखा। श्रीपाल के पूछने पर उसने उत्तर दिया—"हे स्वामिन्!
(अजान पुरुष को पहिले ही वाक्य में 'स्वामिन्' कहकर सम्बोधन करे यह भी एक
आश्चर्य है!) मेरे गुरु ने विद्या का मन्त्र दिया है मैं उसका जाप कर रहा हूं, परन्तु
मेरा मन चञ्चल एक जगह स्थिर नहीं रहता इसलिये मन्त्र सिद्ध नहीं होता, इस
लिये आप इस विद्या को सिद्ध करें; क्योंकि आप सहनशील दिखाई देते हैं" कुछ
आनाकानी करने के बाद श्रीपाल मन्त्र सिद्ध करने के लिये बैठा और बस एक ही
दिन में सिद्ध होगया। यह सिद्ध विद्या फिर उसने उस वीर (विद्याधर) को

कफ का आराधन करके अपने पैर का अँगूठा जहाज से लगाया। अँगूठा लगते ही सारे जहाज तैरने लग गये। सेठ ने उसे अपने साथ सफर में आने की विनती की। श्रीपाल ने सेठ की कमाई का दसवा भाग मांगा और सेठने स्वीकार किया इस लिये श्रीपाल भी उसके साथ चल दिया।

वैष्णव लोगों में सत्यनारायण की कथा पढी जाती है (और व्रत विधान भी किया जाता है) उस कथामें भी सत्यनारायण के नामसे इसी तरह से जहाजों के तैरने का जिक्र आता है, परन्तु उस कथा को तो जैन लोग हमेशा-मूर्खता बताते हैं, मगर जब जैन कल्पित कथाकार ऐसा ही चमत्कार बताता है तब वह जैनधर्म का प्रताप माना जाता है। वाह ! पदार्थों का देखने का कैसा अच्छा ऐनक चस्मा है।

धवल सेठके ५०० जहाज चले जारहे थे इतने में सामने से सामुद्रिक डाकुओं का एक जहाज आता दिखाई दिया। उसे देखकर सेठके साथ वाले बहादुर अपने हथियार तैयार करने लगे। इतने ही में डाकुओं का जहाज पास में आगया। डाकुओं ने सब धन माल सौंप देने की या लडाई के लिये तैय्यार होने की सूचना दी। सेठके शूरवीरों ने लडाई करना स्वीकार किया, युद्ध किया। कई डाकू मारे गये। शेष रहे वे अपने प्राण लेकर भाग गये। (ऐसे शूरवीर सिपाही जिस सेठ के पास थे वह सेठ और वे शूरवीर भी बलिदान के वक्त श्रीपाल के शब्द मात्र से कांप गये। यह बात कैसे मानी जा सकती है ?) जहाजों में फिरसे शान्ति होगई परन्तु यह शान्ति ज्यादा देर तक न टिकी। डाकू लोगोंने अपने दूसरे समुदाय को लाकर फिरसे सेठ के जहाजों पर धावा किया और सेठको पकडकर अपने जहाज में ले लिया। तब तक श्रीपाल यह सब 'कौतुक देखता रहा' अन्तमें श्रीपाल चुप न रह सका। उसने डाकुओं से सम्बोधन करके कहा—"ऐ नीच पुरुषो ! क्या तुम मेरे सामने ही सेठ को बांधकर ले जाओगे ? ऐ कायरो ! ठहरो और सेठ को छोडकर क्षमा मांगो नहीं तो अपना अन्तकाल पास आया ही समझना," बस ! इतने शब्द सुनते ही वीर चाचियों का सामुद्रिक डाकुओं का दल कांप उठा और वह श्रीपाल के शरण में आगया। फिर सेठ को छुडाकर अपने जहाज में बिठाया और चाचियों को मित्र बना वस्त्राभूषण दिये और उन्हें प्रीति भोजन देकर रवाना कर दिया। उपकार से दबे हुए चाचियोंने अपने भण्डार में सग्रहीत रत्नादि द्रव्यों से भरे हुए सात जहाज श्रीपाल के भेंट किये। अन्त में जहाज हंसद्वीप में पहुचे, और श्रीपाल तथा सेठ जिन देव के दर्शन करने की इच्छा से मन्दिर ढूढने गये। उन्होंने एक स्वर्ण मन्दिर देखा। (स्वर्ण मन्दिर किसी ने सुना भी था ?) उसके दर्वाजे वज्र के किवाडों से बन्द थे। द्वारपाल ने

कहा—' अनेक योद्धा अपना बल आजमा गये परन्तु किसी से यह द्वार नहीं खुला और इसी से कोई भी इस मंदिर में प्रतिष्ठित प्रतिमा के दर्शन नहीं कर सकता। श्रीपाल ने किवाड़ों पर हाथ लगाया। तत्काल ही किवाड़ खुल गये। द्वारपाल ने दौड़ कर नगराधिप के पास यह खबर पहुंचाई।

यहां राजा की थोड़ी सी पूर्व कथा पर लक्ष देना पड़ेगा। उसका नाम कनक केतु था। उसके रत्नमंजूषा नामक एक जवान लड़की थी। राजा को इस बात की भारी चिन्ता थी कि कन्या का लग्न किसके साथ किया जाय। किसी मुनिको इस विषय में पूछने के लिये (क्योंकि यदि जैन मुनि ही पर कन्या के चौपड़े न बैठा देंगे तो फिर और कौन बैठावेगा ?) राजा मुनि की तलाश में निकला। एक स्थानमें उसने मेरु के समान दिगम्बर जैन मुनिको देखे-जो कि मेरुके तुल्य अडग होकर ध्यान लगा रहे थे-राजा ने उनकी भक्ति की। ध्यान समाप्त होने पर राजाने पूछा—' मेरी पुत्री का पति कौन होगा ?, मुनिने उत्तर दिया—"जो कोई चैत्यालय के वज्र समान द्वार उघाड़ेगा वही इस कन्या का पति होगा,, राजा को पहिले ही से यह बात मालूम हो गई थी इसलिये उसने अपनी पुत्री को श्रीपाल के साथ ब्याह दी। (आपाल ने अपनी पतिव्रता स्त्री के उपदेश पर पानी फिराया, उसने इसी पर भी पानी फिराया और जोरदान देने वालो स्त्रीके प्रेम का द्रोह किया।) कुछ दिन बाद श्रीपालने फिर सफर करनेकी तैयारी की रत्नमंजूषा को भी राजाने उसके साथ रवाना कर दी और साथमें बहुत से रत्न, दास, दासी आदि दिये। विदा करते वक्त राजाने कहा—'हे कुमार! मैं तुम्हारा कुछ भी सेवा शुश्रूषा न कर सका इसलिये क्षमा करना, मगर सेवा करनेके लिये आपको यह दासी देता हूं इससे भली भांति सेवा करवाना,, कोई मनुष्य (और वह भी राजा) अपने जामाता को-जवाई को अपनी लड़की के साथ दासीके समान व्यवहार करनेकी बात कहता होगा ? इसे विवेक कहें या निर्लज्जता ?

जहाज रवाना हुए। रत्नमंजूषा का रूप देखकर धवल सेठ को काम ज्वर उत्पन्न हुआ। उसे प्राप्त करने के लिये उसने एक युक्ति की उसने अपने लोगों को सिखाये। लोग चिल्लाने लगे कि चोर चले आरहे हैं। चिल्लाहट सुन श्रीपाल थाम पर चढ़कर देखने लगा। संकेतानुसार श्रीपाल समुद्र में गिरा दिया गया। जहाज आगे रवाना हुए। अब सेठ ने रत्नमंजूषा के पास एक दूती भेजी, परन्तु उसका जाना निष्फल हुआ। इसलिये सेठ स्वयमेव उसके पास गया। जब खुशामद दरामद से कुछ काम नहीं चला तब उसने जबरदस्ती करने की कोशिश की। सती ने भगवान का स्मरण किया इसलिये जलदेव उसकी मदद को आया और उसने धवल सेठ की

मुश्कें बांध उसका मुंह काला किया और फिर इसके मुह में मल मूत्र भर दिया। जे
इसके अन्य लोगों पर अदृश्य प्रहार होने लगा। आखिरकार रत्नमंजूषा से क्षमा
मांगने पर सब का छुटकारा हुआ। अस्तु।

श्रीपाल परमेष्ठी मन्त्र की आराधना करता रहा, इसलिये वह समुद्र में तैरता
रहा और वह तैरता हुआ कुंकद्वीप के किनारे जा पहुंचा। उस देश के राज सेवकों
ने श्रीपाल को राज जवाई बना लिया और कारण यह बताया कि हमारे राजा सत
राज के एक गुणमाला नाम की सुन्दर कन्या है। उसके लिये एक जैन मुनि ने कहा
था कि जो पुरुष समुद्र तैर कर आवेगा वह तुम्हारी कन्या का पति होगा। (पहिले
जमाने में मुनि क्या जगह जगह ऐसे ही धन्धे करते रहते थे ? भविष्य ज्ञान का उप-
योग करने के लिये क्या किसीके ब्याह की बातें बताते रहने के सिवा उन्हें और कोई
कार्य ही नहीं था ?) खैर, गुणमाला के साथ श्रीपाल ने राजी खुशी से ब्याह कर-
लिया। उसने अपना सब हाल भी कह सुनाया। कुछ दिनों के बाद धवल सेठके ज
हाज भी वहीं जा पहुंचे। सेठ बहुमूल्य जवाहरात लेकर राज्य सभा में आया और
श्रीपाल को बैठा देखकर घबराया, उसे अपने जीवन की शङ्का हुई। सेठने भांड
(बहुरूपी) लोगों को सिखा कर राज्यसभा में भेजे और उनसे कहलाया कि श्री
पाल हमारा पुत्र है। राजाने यह सोच कर कि श्रीपाल ने उसे धोखा दिया है, श्री-
पाल को फांसी देने की आज्ञा दी। गुणमाला श्रीपाल के कहने से जहाजों पर गई
और रत्नमंजूषा को लाकर उससे श्रीपाल का वास्तविक वृत्तान्त कहलाया। इससे
श्रीपाल बच गया। एक दिन अपनी दोनों स्त्रियों के साथ बैठा हुआ श्रीपाल आनन्द
कर रहा था, उसी समय में किसी ने आकर श्रीपाल से कहा—"मैं कुण्डलपुर ना
मक नगर के—जो कि यहांसे थोड़ी ही दूर है—राजाका दूत हूं। राजाके एक चित्ररेखा
नाम की कन्या है। उसके लग्नके विषय में एक दिगम्बर मुनि से पूछा था। मुनिने
आपका नाम बताया, इसी लिये हमारे राजा ने मुझे आपके पास विनती करने के
लिये भेजा है,, एक महा उपकार कर्ता स्त्री का त्याग करने वाला श्रीपाल दो नव
परणीत स्त्रियों के साथ आनन्द करता हुआ तीसरी सुन्दरी मिलने की बात सुनकर
बहुत प्रसन्न हुआ। दूतको सरोपाव दिया और तीसरी कन्या को भी ब्याह लाया।
उनके साथ हास्य विनोद कर रहा था इतने ही में फिर एक दूत आया और उसने
कञ्चनपुर के राजा वज्रसेन की विलासमती आदि ६०० कन्याओं को ग्रहण करने की
श्रीपाल से विनती की। यह विनती भी एक दिगम्बर जैन मुनिकी सलाह से ही का
—श्रीपालको ऐसी बातोंसे भला कब इनकार था ? उसने उन ६०० के साथ भी

कहा—"अनेक योद्धा अपना बल आजमा गये परन्तु किसी से यह दर्वाजा नहीं खुला और इसी से कोई भी इस मन्दिर में प्रतिष्ठित प्रतिमा के दर्शन नहीं कर सकता। श्रीपाल ने किवाड़ों पर हाथ लगाया। तत्काल ही किवाड खुल गये। द्वारपाल ने दौड़ कर नगरसिंह के पास यह खबर पहुंचाई।

यहां राजा की थोड़ी सी पूर्व कथा पर लक्ष देना पड़ेगा। उसका नाम कनक केतु था। उसके रत्नमंजूषा नामक एक जवान लड़की थी। राजा को इस बात की भारी चिन्ता थी कि कन्या का लग्न किसके साथ किया जाय। किसी मुनिको इस विषय में पूछने के लिये (क्योंकि यदि जैन मुनि ही वर कन्या के चौकड़े न बैठा देंगे तो फिर और कौन बैठावेगा?) राजा मुनि की तलाश में निकला। एक स्थानमें उसने मेरु के समान दिगम्बर जैन मुनिको देखे-जो कि मेरुके तुल्य अडग होकर ध्यान लगा रहे थे-राजा ने उनकी भक्ति की। ध्यान समाप्त होने पर राजाने पूछा—"मेरी पुत्री का पति कौन होगा?,, मुनिने उत्तर दिया—"जो कोई चैत्यालय के वज्र समान द्वार उघाडेगा वही इस कन्या का पति होगा,, राजा को पहिले ही से यह बात मालूम होगई थी इसलिये उसने अपनी पुत्री को श्रीपाल के साथ ब्याह दी। (श्रीपाल ने अपना पतिव्रता स्त्री के उपदेश पर पानी फिराया, उसके इच्छा पर भी पानी फिराया और जीवदान देने वाली स्त्रीसे प्रेम का द्रोह किया।) कुछ दिन बाद श्रीपालने फिर सफर करनेकी तयारी की रत्नमंजूषा को भी राजाने उसके साथ रवाना कर दी और साथमें बहुत से रत्न दास, दासी आदि दिये। बिदा करत वक्त राजाने कहा—'हे कुमार! मैं तुम्हारा कुछ भी सेवा शुश्रूषा न कर सका इसलिये क्षमा करना, मगर सेवा करनेके लिये आपको यह दासी देता हूं इससे भली भांति सेवा करवाना,, कोई मनुष्य (और वह भी राजा) अपने जामाता को-जमाई को अपनी लड़की के साथ दासीके समान व्यवहार करनेकी बात कहता होगा? इसे विवेक कहें या निर्लज्जता?

जहाज रवाना हुए। रत्नमंजूषा का रूप देखकर धवल सेठ को काम ज्वर उत्पन्न हुआ। स्त्री प्राप्त करने के लिये उसने एक युक्ति की उसने अपने लोगों को सिखाये। लोग चिल्लाने लगे कि चोंचिये आरहे हैं। बिलाहिद सुन श्रीपाल बांस पर चढ़कर देखने लगा। संकेतानुसार श्रीपाल समुद्र में गिरा दिया गया। जहाज आगे रवाना हुए। अब सेठ ने रत्नमंजूषा के पास एक दूती भेजी, परन्तु उसका जाना निष्फल हुआ। इसलिये सेठ स्वयमेव उसके पास गया। अब खुशामद दरामद से कुछ काम नहीं चला तब उसने जबर्दस्ती करने की कोशिश की। सती ने भगवान का स्मरण किया इसलिये जलदेव उसकी मदद को आया और उसने प्रथम सेठ की

ल किसी देश में गया और अपने चचा को पराजित कर अपना राज्य उससे वा-स ले लिया।

इतना सब हुआ, परन्तु पुत्री की इच्छानुसार वर देनेके सिद्धान्त और रिवाज को खण्डण करने वाले पुहुपाल राजा पर ग्रन्थकारका जो क्रोध होगया था वह नहीं गया इसलिये उसने मैनासुन्दरी से श्रीपाल को कहलाया— 'मेरे पिता को पराजित करके मान भङ्ग करो और जब वह कन्धे पर कुल्हाडी रख, लँगोट पहिन कर और तुम्हारे पास क्षमा मांगने के लिये आवे तब ही तुम उसे क्षमा करो,, पाठक देखिये ! जैन धर्म की फिलासफी की ज्ञाता का कैसा बढ़िया आचरण है ? पितृ भक्ति का कैसा अच्छा नमूना है ? यदि कहीं ग्रन्थकर्त्ता का कुछ चलता तो वह अपने को जैन बताने वाले लोगों (वास्तव में चाहे वे जैन धर्मके विरुद्ध ही सारे आचरणों को करते हों) के सिवा सारे संसार के लोगों को नष्ट कर देता या कमसे कम उन्हें दास तो अवश्यमेव बना देता। शङ्कराचार्य्य के समय में ब्राह्मणों ने जैन अनुयायियों की यही दशा की थी। उन्होंने सैकडों लोगों को जैनधर्म नहीं छोडने के अपराध में घानी में पिलवाये थे और सैकडों को दास बनाये थे। जो गुलाम बना लिये गये थे उनके वंशज आज भी 'पेरिया' नाम की जाति से मद्रास में मौजूद हैं। हिन्दु लोग उन्हें अस्पृश्य जाति के गिनते हैं और मरण पर्य्यन्त अपने आधीन रखकर पशुओंकी तरह उनसे काम कराते हैं। धर्म पन्थों के ऐसे झगडों के साथ धर्मतत्त्वों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। क्या जैन और क्या ब्राह्मण दोनों वास्तव में तो धर्म तत्त्वोंके शत्रु ही हैं। वास्तविक जैनत्व और वास्तविक ब्राह्मणत्व में कुछ अन्तर नहीं है। उनमें ईर्षा, अहङ्कार और सङ्कुचित भावों के लिये जगह नहीं है।

अब हम थोडे में ही बतायेंगे, पूरा करेंगे—मैनासुन्दरी के ४ रत्नमंजूषा के ७ गुणमाला के ५ इस तरह सब रानियों के मिलाकर १२००० पुत्र हुए।

अन्त में गुरु का उपदेश सुनकर श्रीपाल ने दीक्षा ली और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चला गया (इस उच्च शिखर पर ता कुछ भी क्रम नहीं बताया गया)

कथा यहीं पूरी होती है। इसमें एक भी बात मुझे ऐसी नहीं मिली जो अनुकरण करने के योग्य हो। इसमें जितने २ चमत्कारोंका उल्लेख किया गया है वे सारे असम्भव हैं। जो लोग यह समझते हों कि धर्म सेवन करनेवालों को उक्त प्रकार से धर्म सेवन का बदला मिलता है उन्हें चाहिये कि वे यहीं परीक्षा करके देख लेवें।

+ इस वैर का बदला चुकाने ही के लिये शायद लेखक ने उक्त मंत्र गढ़ी (पाठक)

ब्याह कर लिया और आनन्द मनाने लगा। एक दिन फिर कुंकुमपुर के राजा का दूत आया और उसने शृङ्गारगौरी आदि १६०० राज कन्याओं को स्वीकार करने की प्रार्थना की और श्रीपाल ने उनका पाणिग्रहण किया। (धन्य है ऐसे बलिहारी को!)

यहां पाठक शायद ऐसा ख्याल करेंगे कि यह सारे विवाह श्रीपाल के भाग्य निमित्त ही निमित्त हुए थे, अन्यथा श्रीपाल के मन में उन्हें भोगने की कुछ इच्छा नहीं थी। यह तो भाग्यवली का फल प्रताप था। इसलिये हम यहां यह बताना आवश्यकीय समझते हैं कि अन्तिम १६०० कन्याओं के साथ ब्याह करने के लिए यह प्रण था कि जो कोई उनमें से आठ लड़कियों के प्रश्नों का उत्तर देगा वही इन लड़कियों का पति होगा-इसलिये श्रीपाल उनके प्रश्नों का उत्तर देने के लिये गया था। इससे यह जाहिर है कि उसको धनी और कन्याओं की भूख थी। कामेच्छा तृप्ति के लिये अनुपम कन्याओं के होने पर भी जिसकी विषयेच्छा तृप्त नहीं होती थी, जो सैकड़ों युवतियों के साथ अमन चैन करता हुआ भी विशेष स्त्रियां साथ ब्याह करता था ऐसे विषय लोलुप पुरुष के जीवन चरित्र लिखने से मनुष्य जाति का क्या उपकार होता है? सो हमारे कुछ समझ में नहीं आता।

पाठक घबराइये नहीं इतने पर भी श्रीपाल की भूख पूरी न हुई थी इसलिये वह कोंकन देश की २००० कन्याएं मेवाड़ की १०० कन्याएँ और तैलङ्ग देश की १००० कन्यायें ब्याह कर लाया। इसी तरह सौरठ पति की ५०० कन्यायें, महाराष्ट्र पति की ५०० कन्याएँ गुजरात की ४०० कन्याएँ और वैराट की ७०० कन्याएँ का भाग्यश्री खिली हुई। हिन्द के बहुत से प्रान्तों की कन्याओं के साथ श्रीपाल का ब्याह नहीं हुआ। इसका कारण यह मालूम होता है कि कथाकार को भूगोल का ज्ञान नहीं था। यदि उसे यह ज्ञान होता तो यह सारे प्रान्तों की थोड़ी बहुत कन्याओं के साथ श्रीपाल का अवश्यमेव गँठजोड़ा बँधवा देता।

एक एक करके कन्याओं के साथ ब्याह करते ही में १२ वर्ष पूर्ण हो गये। इतने काल में शस्त्र-विद्याओं और अस्त्र शस्त्रों के पारगामी श्रीपालजी ने जैसा कि कथाकार ने हमें बताया है एक भी कार्य ऐसा नहीं किया जिससे उनकी शक्ति का या उनके बुद्धि वैभव का हम अन्दाजा लगा सकते। कथाकार यह सिद्ध करना चाहता था कि अमुक यन्त्र करने से घर बैठे ही सारी सिद्धियां मिल जाती हैं इसलिये उसने श्रीपाल को घर बैठे ही हजारों कन्याएँ दिला दीं। ([illegible] को ऐसे का इलाज कैसे मिलता?) इतना ही नहीं साथ ही [illegible] दिलवा दिये। उन सारी कन्याओं को [illegible]

श्रीपाल निज देश में गया और अपने चचा को पराजित कर अपना राज्य उससे वापिस ले लिया।

इतना सब हुआ, परन्तु पुत्री की इच्छानुसार वर देनेके सिद्धान्त और रिवाज को प्रकपणा करने वाले पुहुपाल राजा पर ग्रन्थकारका जो क्रोध होगया था वह नहीं मिटा इसलिये उसने मैनासुन्दरी से श्रीपाल को कहलाया— 'मेरे पिता को पराजित कर उसका मान भङ्ग करो और जब वह कन्धे पर कुल्हाड़ी रख, लँगोट पहिन कम्बल ओढ़ तुम्हारे पास क्षमा मागने के लिये आवे तब ही तुम उसे क्षमा करो,, पाठक देखिये! जैन धर्म की फिलासफी की ज्ञाता का कैसा बढ़िया आचरण है? पितृभक्ति का कैसा अच्छा नमूना है? यदि कहीं ग्रन्थकर्त्ता का कुछ चलता तो वह अपने आपको जैन बताने वाले लोगों (वास्तव में चाहे वे जैन धर्मके विरुद्ध ही सारे आचरण क्यों न करते हों) के सिवा सारे संसार के लोगों को नष्ट कर देता या कमसे कम उन्हें दास तो अवश्यमेव बना देता। शङ्कराचार्य्य के समय में ब्राह्मणों ने जैन धर्मानुयायियों की यही दशा की थी। उन्होंने सैकड़ों लोगों को जैनधर्म नहीं छोड़ने के अपराध में घानी में पिलवाये थे और सैकड़ों को दास बनाये थे। जो गुलाम बनाये गये थे उनके वंशज आज भी 'पेरिया' नाम की जाति से मद्रास में मौजूद हैं। हिन्दु लोग उन्हें अस्पृश्य जाति के गिनते हैं और मरण पर्य्यन्त अपने आधीन रखकर दासोंकी तरह उनसे काम करवाते हैं + धर्म पन्थों के ऐसे झगड़ों के साथ धर्मतत्त्वों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। क्या जैन और क्या ब्राह्मण दोनों वास्तव में तो धर्मतत्वोंके शत्रु ही हैं। वास्तविक जैनत्व और वास्तविक ब्राह्मणत्व में कुछ अन्तर नहीं है, इनमें ईर्षा, अहङ्कार और सङ्कुचित भावों के लिये जगह नहीं है।

अब हम थोड़े में ही बतायगे, पूरा करेंगे—मैनासुन्दरी के ४ रत्नमञ्जूषा के ७ गुणमाला के ७ इस तरह सब रानियों के मिलाकर १२००० पुत्र हुए।

अन्त में गुरु का उपदेश सुनकर श्रीपाल ने दीक्षा ली और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चला गया (इस उच्च तत्त्व पर तो कुछ भी काम नहीं बताया गया)।

कथा यहीं पूरी होती है। इसमें एक भी बात मुझे ऐसी नहीं मिली जो अनुकरण करने के योग्य हो। इसमें जितनी २ घटनाओंका उल्लेख किया गया है वे सारी असम्भव हैं। जो लोग यह समझते हों कि धर्म सेवन करनेवालों को इस प्रकार से धर्म सेवन का बदला मिलता है उन्हें चाहिये कि वे यहीं परीक्षा करके देख लेवें।

इस वैर का बदला चुकाने ही के ... लेखक ने ... [illegible]
... गद्य)

गृहावासमध्ये वसहक्रभाजां, सदा द्रव्यचिन्ता सदा पुत्र-चिन्ता। सदा-दार चिन्ता सदा बन्धु-चिन्ता, सुखं नास्ति चिन्ता परसीत्रह्य किंचित् ॥ ३० ॥

गिरीणां यथा राजते रत्नसानुः, सुराणां सुरेन्द्रो नराणां नरेन्द्र। जिनानां जिनेन्द्रो ग्रहाणाच चन्द्रो, मतानां तथा राजते ब्रह्मचर्य्यं ॥ ३१ ॥

गृहस्थियोंको सदा चिन्ता रहताहै, कभी पुत्रकि कभी द्रव्यकी कभी स्त्रोकी कभी भाइकी, इस वास्ते चिन्ता करके समस्त पुरुषोंको सुख नही होताहै ॥ ३० ॥

पर्वतोंमे मेरू पर्वत सबका राजाहै, देवतोंमे इन्द्र सबका राजा है, जैसे जिनोमे जिनेन्द्र सबका राजा है, ग्रहोंमे चन्द्र सब ग्रह का राजा है तैसे व्रतोमे ब्रह्म व्रत सबका राजा है ॥३१॥

परस्त्रीप्रसङ्गादनेकोऽस्ति दोषो, व्रतस्य प्रणाशो गुणस्य प्रणाशः। नरेन्द्रस्य दण्डो जनानांच चण्डो, निग्रातो न कार्य्यः परस्त्री-प्रसङ्गः ॥ ३२ ॥

यथा याति सूर्य्यावलोकेऽक्षितेजो, तथा याति रामावलोके जनानां। महाब्रह्मचर्य्याक्षि तेजो हि कैश्चित् न सूर्य्ये न नार्य्यां च दृष्टिस्तु देया ॥ ३३ ॥

परस्त्री का प्रसंग करने से अनेक दोष होता है, व्रत का नाश गुणका नाश होता है, राजा दण्ड देता है, मनुष्य निन्दा करता है, इसको विचारके मनुष्यको चाहिये कि परस्त्रीका प्रसङ्ग न करे ॥३२॥

जैसे सूर्य्य की तरफ दृष्टि करने से, तैसी तरह परस्त्री की देखन मे मनुष्य का तेज क्षय होता है, ब्रह्मचर्य्य रखनेकेवास्ते और नेत्रका तेज रखनेके वास्ते नही परस्त्री की तरफ देखना सूर्य्यका त... देखना ॥ ३३ ॥

महाप्रतापी रामचन्द्रजी का ब्याह ब्राह्मणों ने एक ही कन्या के साथ करवाया और विवश राम को सीता का त्याग करना पड़ा, तब भी उन्होंने राम के हृदय में कभी एक से दूसरा ब्याह करने की इच्छा उत्पन्न नहीं करवाई। यह कौन न कहेगा कि जैनियों का ऐसी कथाओं की अपेक्षा उक्त कथा विशेष उच्च कोटि का चारित्र पालना सिखाती है। पुरुषों को धर्म द्रव्य के बदले में मनमानी स्त्रियां देनेवाले और नाजुक, अल्प आयु की अबला को एक पति के मरजाने पर दूसरा पति कर अपना रक्षण करने के लिये भी निषेध करनेवाले कितने स्वार्थी, अधर्मी और अन्यायी हैं?

इसी भव में जिसका मोक्ष होनेवाला है ऐसे पुरुष का चारित्र बहुत उत्तम होना चाहिये। पहिले कई जन्मोंसे उसका चारित्र गढ़ा हुआ और परिपक्व बना हुआ होना चाहिये। यह सहज ही में अन्दाजा लगाया जा सकता है कि चरमशरीरी जीव का चारित्र जनसमाज के लिये आदर्श होना चाहिये। मगर यहां तो श्रीपाल का चरित्र सर्वथा प्रतिकूल है। कथाकार ने इस चरमशरीरी का जो चरित्र चित्रण किया है इससे तो साफ मालूम होता है कि उसका चरित्र सामान्य मनुष्यों की पंक्ति में गिनने योग्य भी नहीं है। या तो श्रीपाल कोई कल्पित पात्र है और यदि वह ऐतिहासिक पुरुष हुआ है तो उसका चरित्र भी इस कथा में वर्णित चरित्र से सर्वथा भिन्न होना चाहिये। जो चरमशरीरी अथवा आदर्श पुरुषों के नाम के साथ इस कथा में वर्णन किये हुए वृत्तान्त के समान वृत्तान्त जोड़ सकते हैं उनके लिये मुझे कहना चाहिये कि वे धर्म का ह्रास करके जैनधर्म का कुछ भी रहस्य नहीं समझे हैं। इससे सिवा और विशेष क्या कहा जा सकता है?

——॥ समाप्त ॥——

अनङ्गाग्निधूमान्धकारेण कामी, न जानातिमार्गं कुमार्गंच कंचित्। न जानाति साधुं कुसाधुञ्च कंचित्, न जानाति कार्य्यं कुकार्य्यंच किंचित् ॥ २४ ॥

गृहे यत्र नारी निवासं करोति, प्रशस्तो न तत्रास्ति वासो मुनीना । गुहायां हरिर्यत्र वासं करोति, प्रशस्तो न तत्रास्ति वासो मृगाणा ॥ २५ ॥

कामरूप अग्नि के धूयें से कामी को सुमार्ग और कुमार्ग नहो देख पडता है, और न कृत्य, न अकृत्य, जानता है ॥ २४ ॥

जिस घर में स्त्री का वासा है, उस घरमे मुनिकी बसना न चाहिये, जैसे जहां सिंह बसता है तहां हिरणों की रहना भला नही ॥ २५ ॥

शीलेन प्राप्यते सौख्यं शीलेन विमलं यशः ।
शीलेन लभ्यते मोक्षस्तस्माच्छीलं वरं व्रतं ॥ २६ ॥

सुकाख्यगच्छाम्बरमित्रतुल्यो, यशस्वि नामा गुणिनां वरिष्ठः । तस्य प्रसादाच्च सुभाषितानां, षट्त्रिंशिकेयं मयका प्रणीता ॥ २७ ॥

ब्रह्मचर्य्य के पालने से सुख मिलता है, और उसी से जश होता है, और उससे मुक्ति होता है, इसवास्ते ब्रह्मचर्य्य सब व्रतो मे श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥

सु का गच्छ रूप गगन मे सूर्य के समान यशस्वि नाम के धरने वाले सब आचार्यो मे श्रेष्ठ हैं, तिनकी कृपा से ए छत्तीस मैने बनाए हैं ॥ २७ ॥

इति प्रश्नप्रकाश समाप्त ।